अन्तरा-शब्दशक्ति

शब्द नाद

(काव्य संग्रह)

पूनम (कतरियार)

शब्द-नाद

(काव्य संग्रह)

पूनम (कतरियार)

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-88102-78-0

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म,प्र) ४८१३३१
शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म,प्र,) ४५२००१
दूरभाष- (कार्या,) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९
अणुडाक- antrashabdshkti@gmail,com
अंतरताना- www,antrashabdshakti,com
प्रथम संस्करण २०१८ - पूनम (कतरियार)
मूल्य - ५५.०० रुपये
आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी
मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Shabd naad by Poonam (katariar)

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भूमिका

सहज-शांत-विशाल समुद्र की तरह जिन्दगी भी अपने भीतर बहुत कुछ समेटे है। रोजमर्रा की जिंदगी में अनेकानेक प्रसंग देश समाज और परिवार में घटित होते रहते हैं और निश्चय ही हमें प्रभावित करते हैं। रंग-रूप, वर्ण-जाति-धर्म, देशकाल की सीमा का उल्लंघन कर संवेदना के स्तर पर यह प्राणीमात्र में एक-सा ही रहता है,,, एक-सा ही उमंग-उल्लास, हास-विलास, दुःख-नैराश्य। सामाजिक, आर्थिक, वैचारिक स्तर पर हम कितने भी भिन्न हो, एक जैसी परिस्थिति के लिए हमारी प्रतिक्रिया एक ही होती है। बशर्ते, हमारी चेतना मानवीय-संवेदना से संचालित हो। यही प्रतिक्रिया एवं अनुभूतियां अवसर पाकर शब्दों में व्यक्त होने को कसमसा उठती हैं और कविता की अजस्त्र-धारा प्रवहमान हो जाती है। मेरा प्रस्तुत काव्य-संग्रह 'शब्द-नाद' वर्तमान-परिवेश में नैतिकता के निरंतर पतन, सामाजिक-संबंधों के घोर-अपमान एवं आत्मीय-संबंधों के बिछलन को स्वयं में समेटे है। हताशा, निराशा, दुराशा के सीलन-भरी तंग-गलियों से गुजरते हुए कई बार मेरे शब्द आक्रोशित भी हो गये हैं। लेकिन, समय पर सोई हुई उम्मीद अंगड़ाई लेते हुए उन्हें संभाल लेती है और दबे-पांव जीवन में दाखिल हो हृदय में मंगलमय-भाव भरकर, संपूर्ण-विश्व में अनंत-शांति स्थापित करने के लिए प्रेरित करने लगती हैं। फलस्वरुप, चराचर-जगत की समस्त वस्तुएं प्रिय लगने लगती है, कण-कण आकर्षित करने लगते हैं, जिंदगी को फिर से दुलराने की इच्छा बलवती हो जाती है। आखिर प्रलय के बाद फिर से सृष्टि लहलहा जाती है न!

अपने लेखन को एक नया आयाम देने की इस कोशिश में अपने पति और बच्चों के साथ ही, मेरे दोनों भाई (श्री मनीत कतरियार एवं श्री अमित कतरियार), मेरी चाची, श्रीमती नीरा कतरियार तथा प्यारी ननद श्रीमती

ज्योत्सना (पिंकी) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूं, जिन्होंने मुझे नित प्रोत्साहित किया और मेरा मनोबल बढ़ाया।

पूनम (कतरियार)

अनुक्रमणिका

1.	धोबी-घाट	7
2.	लुकाछिपी	8
3.	चप्पल	9
4.	शब्द-नाद	10
5.	बिंब	11
6.	थकन	12
7.	मुसाफिर	13
8.	खोखलापन	14
9.	ईख	15
10.	वेदना	16
11.	शर्मिंदगी	17
12.	गर्भा	18
13.	सूखा	19
14.	विभीषिका	20
15.	बीज	21

16. शक्ति 22

17. साथी 23

18. छद्मी 24

19. नियति 26

20. संसद की गरिमा 27

21. जवान की पुकार 28

22. शहीदों के प्रति 29

23. पाथेय 30

24. बेबस किसान 31

25. खेती 32

धोबी-घाट

रिश्तों की गठरी उठाये,
उठते-बैठते, सोते-जागते,
नित जिन्दगी लपेटे गात
पूरा जीवन धोबी-घाट।
रहते धोते अंसुवनजल से,
मलिनता को निशि-प्रात।
पूरा जीवन धोबी-घाट।

बदल बदलकर नाम रिश्तों ने
कोमल-मन भी खूब चटकाए
मौका पा, पटक पाषाण पर,
घुमाकर दिए दो हाथ,
पूरा जीवन धोबी-घाट।

अहसानों का जल निचोड़ा,
निचोड़ लिये जज़्बात।
चमक खो गई जिंदगी की,
कुचल गई मन की बात,
पूरा जीवन धोबी-घाट।

आस ने फिर इस्त्री उठाई
बेरौनक ही सही तह लगा दी
सब अब दिखते स्वच्छ-साफ
पूरा जीवन धोबी-घाट।

लुकाछिपी

नि:शब्द-निराकार,
एकरुप-एकाकार,
श्याम-वर्ण में पुते,
टटोलते एक-दूजे को,
अचानक खुलते द्वार,
रोशनी में नहा जाते,
समस्त स्पष्ट हो जाता,
भोली हंसी खिलखिला उठती,
बचपन का वह खेल था,
लुकाछिपी का खेल था।
जारी है आज भी वह,
'लुकाछिपी का खेल'
छुप गये है आज हम ,
अपनी-अपनी इच्छा से,
इस-उस कोने में,
परदे के पीछे कोई, मेज के नीचे कोई,
आलमारियों में, तिजोरियों में,
छुप गए हैं वेश बदल,
राजा व रंक में, वर्ग व वर्ण में,
मन भी है किया स्याहदार,
खुले हैं द्वार पर रोशनी आती मंद है,
न है कोई टटोलता, न ही है कोई ढूंढता,
लुकाछिपी के इस खेल में,
निरंतर हम हार रहे,.. हारते ही जा रहे।

चप्पल

पता नहीं क्या उम्र होगी चप्पल की मेरी?
पहना है इसे मेरी मां ने,
उनकी मां ने,.. और न जाने कितनी मांओं ने?

परम्परित मन मेरा आक्रांत हो देखता है
इस टूटी चप्पल को, जगह जगह ठुकी कीलों को
कैसे पहनूँ इन्हें?,.. ये चूभेगीं मेरे पांव में।

नहीं,. नहीं पहनूंगी
नहीं चाहिए मुझे इन चप्पलों की ठावं
नहीं है इतने नाजुक मेरे पांव।

पथरीले-कँटीले राहों का विस्तार
अपने भरपूर आकर्षण केसाथ
मेरे अभिनंदन को है तैयार।

क्षमा करना, मेरे शहर,.. मेरे गांव
देखो प्रलोभन त्याग इन चप्पलों का
सुदूर-सुदृढ़-लक्ष्य की ओर,
तीव्र-त्वरित भाग रहे मेरे नंगे पांव॥

शब्द-नाद

बड़बोलेपन की चाहतें,
रोज़-रोज़ की अदावतें,
उघड़ी-उघड़ी है मानवीयता,
चिथड़ी-चिथड़ी हैं आत्मीयता,
तार-तार है नैतिकता,
चिंदी-चिंदी स्त्री की अस्मिता,
हैवानियत की नई बुलंदियां!! (तिस पर तुर्रा यह है)
कानफोड़ू परिचर्चाएं समाचार-चैनलों की,
अव्वल होने की चिंताएं,
स्वघोषित अक्लमंदों की फौज,
बुद्धिजीवी का पहन जामा,
उच्च पद-प्रतिष्ठा की आड़ में,
कर रहा रोज़ कारनामा।
दग्ध मन-प्राण है देख कर ऐसे हालात
विदीर्ण हृदय कर रहा आर्तनाद,
आ रे वंशीधर, कोई नाद छेड़
गोपियों की लाज रख,लीला कर
डमरु वाले, आ, डमरु बजा,
आज मांग है समय की फिर वही तांडव कर
बढ़ गया है भार मही का फिर वही तांडव कर।
खोल जटा, निकाल थोड़ी
अंजुरी भर कर खुशियां छिड़क दें चहुं दिशा में
हताश जन मन में,
कुछ तो ठंडक पा जायेंगी, निरंतर तपती उदासियां।

बिंब

कुछ मत दो
सिवाय,
एक बिंब के,
बिम्ब,,,
उतरे जिसमें
मेरा 'मैं'
मैं, जिसमें है
'समाज'
अपनी तमाम,
कही-अनकही
छुई-अनछुई,
दबी-कुचली लालसा लिए,
नाउम्मीदी, निराशा लिए
बिताता है हर एक दिन।
बिन स्वतः-स्फूर्त उल्लास के
बिन प्रकृत हास परिहास के
चपल चंचल ऊर्थ्व जोश बिन
घड़ी 'औ' नोट गिन-गिन।
इसीलिए कहती हूं, ये मन
कुछ मत तलाश
सिवाय एक बिंब के,
जो भर दे जीवन में
नवरंग, नवलय, नवछंद।

थकन

थके-हारे से हैं ये दिन,
बड़े हताशे से हैं ये दिन,
भोर की स्फूर्ति भी, उनींदी-सी है,
निढाल -रातें भी, सो नहीं पातीं है,
बुझी आंखें सपनों से नहीं सजते,
खुली आंखों की दिनचर्याएं बोझिल-सी,
जाने कहां गए,
वो भोर का मुलायम-रेशम-चेहरा,
ओस से भीगीं वो सिहरन भरी रातें,
कहां खो गए,
वो, अल्हड़-मन की प्रेम-पाती,
वो, चौपालें, वो संगी साथी,
बैल बन गया कोल्हू का,
चलते ही रहता हूं,
निरंतर,आगे बढ़ते ही रहता हूं,
लौटकर वहीं, फिर स्वयं को वहीं पाता हूं,
जोश कहां,
क्लांत से पूरित है ये मन,
तनाव से मुक्त अब कहां जीवन?
'मेहनतकश' की परिभाषा अब नवीन गढ़ों,
'इन्सान' नहीं, हमें 'मशीन' कहो।

मुसाफिर

वे अलमस्तियों के दिन थ
मुफलिसियों के दिन थे।
आंखें भरे होते थे, तो क्या!
अधर मुस्कराते रहते थे!!
आगत के पहलू में होते थे,
खुशियां और उल्लास,
अनागत घूरता था लगातार।
अब तो सहेजने में लगे हैं,
विदाई और बिछुड़न भी।
खट्टी- मीठी स्मृतियों से,
ठूंस ठूंसकर मन भर लिया।
लाद दिया है इस बोझ को,
वर्तमान की पीठ पर।
राह में जिम्मेदारी की लाठी
निरंतर है खटखट कर रही,
सतर्क कर रही कदमों को,
अविराम गतिमान बनो,
चाहे हो वैपर्यय हो स्थितियां,
चाहे हो छोड़ना पड़े मुख्य-पथ
थामना पड़े उबड़-खाबड़ पगडंडियां
जैसे भी चलो, रास्ता बना
आगे बढ़ो, चलते चलो
रे मुसाफिर, जागते रहो!!

खोखलापन

रंग-बिरंगे चोलों में
फिरती हैं प्रस्तर-प्रतिमाएँ

भीतर से हैं खोखले सभी
आर्तनाद करतीं हैं माताएं
कभी छीनते नवजातों के सांस
कभी चीत्कार मचाती यात्राएँ।

शहीदों के शवों पर
माल्यार्पण को ये आदी हैं
मातम पसरे घरों में
जाने को ये आदी हैं।

नम आंखों वाले गमगीन मुखौटें
घिसी-पिटी संवेदना देते हैं
सान्त्वना के शब्दों की रिकॉर्ड
अनवरत बजा लेते हैं।

ये खादी वाले कब्रगाह हैं
मानवता इनमें दफन हो गई
हम हाड़-मांस के पुतले हैं
हमें ही 'कुछ' करना होगा।

ईख

ईख की शक्ल में तब्दील
हो गया है आदमी

और जब जीवन की मिठास
भरने लगती है

उसीकी शक्ल का कोई ईख
बनकर आदमी चूस लेता है उसे

फिर फेकें हुए सीठी को
खा जाता है पालतू की तरह

कोई डेढ़-पिंजरा गुलाम।
सच आदमी कहीं मर गया है

आदमियत को दफन करके
ईख में बदल गया है।

वेदना

बन नहीं सके तुम राम
न ही बन सके श्याम
तो क्या हुआ
जिस शक्ल के हो
वह इन्सान ही बन जाते
जिस कोख में पले
उसकी छवि ही पा जाते।

जिस अन्तहीन वेदना से
जन्म दिया जननी ने तुम्हें
तुम्हारे दिये मौत में भी
वही अतंहीन वेदना थी।

तुम्हारी नृशंसता देख
रावण भी घबरा गया
तुम्हारे घृणित कृत्य से
दु:शासन भी सहम गया।

तुमने तो बलात्कार एक तन का किया
परन्तु कोटि आत्मा छलनी कर गये
हजार बिच्छूओ का दंश फिजा में भर गये।
हाय, अब तो हवा भी जहरीली लगती है
और भारतमाता छाती पीट-पीट,
जार-जार रोती है।

शर्मिंदगी

निस्तब्ध उजाड़ दुपहरी में,
उठा हो कहीं बवंडर,
भाग रहीं हो आंधियां,
विक्षिप्त-सी इधर- उधर,
समझ जाना,
कोई कोरा आंचल फटा है,
किसी ने दुपट्टा छीना है।
बिवाइयां फटे सपनों के पांव,
सलाखों से दागा है किसी ने,
रिसते रुधिर नहीं ये,
सिसक रही है कलियां कोई,
मानवता फिर हुई है आज शर्मिंदा,
दामिनी को नोंचा है कोई दरिंदा,
क्षणभर को हतप्रभ हो जाना,
कुछ जुलूस निकालना,
थोड़ी मोमबत्तियां जलाना,
पत्र-पत्रिकाओं में फोटो छपवाना,
सोशल मीडिया में छा जाना,
कुछ दिनों की गहमागहमी,
कुछ दिनों का हो-हंगामा,
संवेदनाओं को झकझोरना,
फिर,, बटोर सहानुभूति को
अपनी राह चले जाना।

गर्भा

पीड़ाएं ऊब चुकी है,
अकेलेपन-एकाकीपन वाले मुखौटे में,
उकताहट है उनमें,
दुःख-वेदना-कातरता वाले
अपनी उपमाओं से,
त्वरित भागना चाहते हैं,
बेचारगी करार देने वाली
घुटन जैसी छलनाओं से,..

सरपट भाग रहीं हैं,
इधर-उधर, तलाश में हैं,
एक नये बिंब के,
दे सके जो एक नया आयाम,
अर्थवता दे सके इन्हें नई
कि, केवल नकारात्मकता
नहीं हैं इनमें,
गर्भा हैं ये पीड़ाएं,
नव विचार, नव समाज
नव मूल्यों के,
नवपन के उद्भव-चिन्ह हैं ये।

सूखा

अय्यास हो गया सूरज, दंभी खूब हुकूम चलावे,
बेचारी हवा दम साधे, कभी बैठी चुप्पी मारे,
तो कभी इधर-उधर है भागे।

फटेहाल हाय बदरा, सावन बस एक कतरा,
उजड़ा-उजड़ा जन-मन है वसुधा अंबर को ताके।

एक हाथ माथे पर, हल को दूजे से थामे,
किसान भाग्य को कोसे बैलों संग मातम बांचें।

फटी बिवाई खेतों की, मरने लगे हैं 'बिरवे'
ग्रामवासिनी भारत-माता, सूना आंचल भींचकर रोये।

जिह्वा फिरा, अधरों पर, गिनते अपने कुनबे को,
जाने अगले बरसात में हम में कितने बच पायें!

नल की टोटी सूखी है, सूखे हैं नदी-सरोवर,
प्यास के मारे पखेरु, अब कैसे प्राण बचायें?

विभीषिका

मां का आंचल फाड़ते हो,
तो अन्न कहां से पाओगे?
मां की कोख उजाड़ते हो,
तो गोद कहां से पाओगे?

मां की आत्मा कराहती है,
तभी कयामत आती है।

पहाड़ गिरने लगते है,
बादल तक फट जाते है,
समुद्र उफनने लगते है,
शेषनाग बेचैन हो जाते हैं,

हम सिर पीटकर यह कहते हैं
प्रकृति विभीषिका लाती है।

बीज

खूब चलाये फावड़े तुमने
अपने दंभ और अहंकार के
खूब रौंदा है तुमने अपने दर्प और बाहुबल से,
व्यर्थ नहीं हुआ अधक श्रम यह
भावों का मेरे कूटने का श्रम यह

गिर गये कुछ बीज मेरे भीतर भी,,
तुम्हारे आक्रोश 'औ' विरोध के
तुम्हारे मुखरता 'औ' विद्रोह के
'सें' लिए हमने इसे थोड़े संयम से
थोड़ी करुणा से,.. थोड़े प्रेम से

अब तो स्फुरण-अकुंरण भी होने लगे
ओ कोंपले भी फूटने लगी
लहलहा उठी है बालियां,...
मुस्करा रह जाती हैं सुनकर
तुम्हारी कर्कश बोलियां

कूट कूटा कर हैं तैयार
संभालने तेरे लड़खड़ाहट को
थामने तेरी कंपकंपाहट को
स्निग्ध प्रेम सिक्त
मेरी मुखरता में शांति पा जाओगे
तृप्ति पा जाओगे' मृदृल हो जाओगे
मेरे लिए,... स्वयं ही विह्वल हो जाओगे,...!

शक्ति

तुम्हे तो सौपा था केवल मृदुल भाव ही
पुरुषत्व के दम्भ मे जलाने क़ो नही।
तुम भूल गए मेरा सतीत्व
तुम भूल गए मेरा अस्तित्व
खोल 'पौरुष' अपनी आँखें,
देख मेरा विशाल रूप।
मैं केवल एक गुलाब नही
मुझमे केवल पराग नही
मैं केवल एक देवी नही
मुझमे केवल वरदान नही।
गुलाब मे कांटे भी हैं वो कभी चुभते भी है।
देवी मे अक्षय शक्ति है, देती वह अभिशाप भी है।
मैं सृष्टि की माता 'चेतन' हूँ
मुझमे स्थूलता का 'जड़' नही
मैं आ रही तुम्हारे समकक्ष
देख मेरे पाँव मे अब कोई जंजीर नही
मैं तोड़ चुकी तुम्हारा बंधन
मैं 'जाग' चुकी, तुम सोये हो
अबला-अबला,.. कह-कहकर
अहंकार मे खोये हो तुम यूँ ही पड़े रह जओगे
मैं आसमाँ छू जाऊँगी तुम देखते रह जाओगे
मैं अपना परचम लहराऊँगी !

साथी

अनेक राह हैं,...
लंबी-लंबी सड़कें,
उबड़-खाबड़ वीथिकाएं,
कच्चे-पक्के रास्ते,
बर्फ वाले पहाड़,
गहरी तलहटियां,
चाय-बागानों की ढलान,
उजड़े-बियाबान, घने-वन,
हर जगह है मौजूद,
इस दुनिया का वजूद,

फिर भी,बन न सकी
एकछोटी,कच्ची-पक्की राह
तुम्हारे और मेरे दरम्यान,
जिसपर चलकर हम
आ सके इतने करीब,
कि 'स्व' समाहित हो,
कायम करें जगत में
एक सम्मिलित-अर्थवता,..
प्रेम की, विश्वास की
उन्मुक्त-विचार-भाव की।

छद्मी

आकर्षक- भव्य,
आभिजात्य-सौम्य,
सौंदर्य-पूर्ण, अप्रतिम रुप,
समग्र सुख, संपदा विपुल,
सुनियोजित ढंग से सजा- सजा
ज्यों झारखंड का एक सुंदर शहर!
उठान-चढ़ान-ढलान जमीन,
महीन-रजकण वाले, शीतल-समीर,
एक सूरत पर इतने नकाब, ज्यों
कमरे में सिमटा संपूर्ण-राष्ट्र।
आदर से पूरित भोला जन-मन
छूने को आतुर तेरे चरण।
है अनजान तुम से! रे छद्मी!
ऐसा छद्म,,,,इतना छद्म
भरे इतना कलुष अपने भीतर
मन है या कोयले का खदान।

रखते सांठ-गांठ खादी से है
भरते घर अपराधी के है
करते कलुष का क्रय-विनिमय,
हो तस्कर तुम मानवता के,
हो नीलामकार नैतिकता के,
झरिया-सा है जलता कामगार,
मूढ़ी को है तरसता परिवार,
खोखले आश्वासन के खदान।

ध्वंस जीवन, मर रहा बारंबार,
ये मुजफ्फरपुर का दुराचार,
देवरिया का बेपर्द अनाचार,
खुद बढ़ कर इन्हे रोकना होगा,
मलकट्टा बन, आगे चलना होगा,
व्यवस्था को टॉर्च जलानी होगी,
रोशनी तो फैलानी ही होगी,
अंधी -सुरंग के दोगले सुन,
ऐ पापी, अपने पाप गुन,
जो बोया, वो काटना होगा,
कर्मो का फल पाना होगा,
करनी जैसी, भरनी होगी,
तुम्हें कड़ी सजा देनी होगी,
'हाय' लगी है जलना होगा,
तिल-तिल कर तुम्हें मरना होगा।

नियति

लंबी-लंबी बहसें हैं
गर्मागर्म हैं परिचर्चाएं
है गंभीर बौद्धिकता भी
निष्कर्ष वही 'शून्य' है।

श्वास टूटती नवजातों की
नियति स्वीकार करें
जाने दो जान जवानों की
उनका तो यही काम है।
नारी -सशक्तिकरण पर
माइक पर दहाड़ दो
पाखंडियों की सजा पर
शहरों को जलाते रहो।

सच्चाई को चीखने दो
संवेदनाओं को मरने दो
आंखों की नमी को
रेतो को सोखने दो
समय की गजब चाल देखो
मगरमच्छों की जयकार है
भेड़-बकरी मतदाताओं की
भेड़िया-सियार सरकार है।

संसद की गरिमा

संसद की गरिमा आज इतनी लाचार है
उसके ही नुमांइदे करते आज उसका बलात्कार है।

गूंजती थी कभी जहां, पुरोधाओं की गंभीर-वाणियां,
आज है वहां केवल, कर्ण- कटु-भद्दी गालियां।

खेल-घर है, खेलते सब, जाति- धर्म के कार्ड से
गरीब- दलित-आरक्षण की, होती बहुत कबड्डियां।

सर्वोच्च -पद भी अब, सहमी- सकुची 'जड़' है,
जाने कौन पड़ गले, इज्जत कर दे तार तार।

फेंकते छिछोरे सरेआम, चवन्नियां-मुस्कान हैं,
शर्म से पानी-पानी, राष्ट्र का अभिमान है।

बढ़ गई है देश में इस कदर छेड़खानियां,
संसद को भी लोग अब तो मारते हैं कनखियां।

जवान की पुकार

सीमा पर अपना सीना तान
धड़कन में बसाये हिन्दुस्तान
राष्ट्र-हवन के लिए प्रस्तुत
स्वयं की समिधा बना
उसकी लपटों से दिक् दिग्न्त
भयाक्रांत था वसुधा-वितान।

विजय-दर्प से प्रदीप्त भाल
आतुर करने को रक्त-तिलक,
पर बांधा किसने उनके कर?
देते नहीं क्यों अधिकार?
कर देगें समर वे आर-पार
मिटा देगें विश्व-मानचित्र से
नासूर, (ना)"पाक' नाम
जो दिल्ली की गद्दी पाये हो
तो धरो हाथ में कृपाण।

इस-उस को देखना छोड़ दो
शब्दों की चाशनी छोड़ दो
भौकना ही कुत्तों का कामहै
सिहं चलता सदैवअपनी चाल
राष्ट्र-नायक हो, हुंकार भरो
राष्ट्र-ऋषि का भला यहाँ क्या काम?

शहीदों के प्रति

मेरे रक्त-चन्दन से, तूने श्रृंगार किया
हे मातृभूमि! तूने मुझसे इतना प्यार किया।

नियामक अपने नियमों से हमें खेलाते रहें
विवश यौवन हमारा, हम नसें भीजतें रहें।

ममता की छावं में तुम्हारी, भूल गया जननी का मुख
आकर्षण में तुम्हारी, भूल गया घरणी का दुख।

क्षत-विक्षत तन को मेरे ,जो फूलों का उपहार दिया
नियंताओं राष्ट्र के मेरे, वह मेरे बच्चों का चीत्कार था।

तिरंगे में लिपटकर मैं चिरनिद्रित हो गया
एक तमगे व प्रशस्ति पत्र में मेरा वजूद सिमट गया।

पाथेय

भागो, सब भागो,,,सारे पांव भागो।
भागते रहो,.. निरतंर भागते रहो।
नियति ताक में है कि रोक ले तुम्हें
निराशा-हताशा के फटे गलीचे
रखेगें पांव तुम्हारे उलझाये
पराजित मन कुंठाओं की कूप से
देंगें तुम्हें हिकारत उलीच-उलीच,
न,,,न,,, जरूरत नहीं मुड़कर देखने की पीछे
भागो भागते रहो निरतंर भागो,
क्योंकि हैं सामर्थ्य तुम में भागने की,
पांव है ऊर्जावान तुम्हारे
(उबड़खाबड़, कच्चा-पक्का, जो भी)
एक पथ है तुम्हारे पास
इसी पथ ने बनाया है पाथेय तुम्हें
भागने का एक अदद हेतु है पास तुम्हारे,
अंतहीन लगती इस राह में
क्लांत पड़े कहीं रुक जाना क्षणभर
होगा जरुर सराय कोई आसपास
होगी बैठी कोई आंचल में छांव छुपाये तुम्हारे लिये
वृद्ध मुसाफ़िर के कुछ उपाय
प्रतीक्षा में होगें तुम्हारे लिये
हो जाओगे स्फूर्तिवान तुम
अस्तु, भागते रहो,.. सारे पांव निरतंर भागो
यही निरंतरता ही तो है पहचान तुम्हारी हे चिरंतर मानव !

बेबस किसान

सूनी हैं खेत अब सूने खलिहान हैं
निस्तेज-निष्प्रभ-निष्प्राण किसान हैं।
मिट्टी की नमी देखो
वात्सल्य से लबरेज है
बीजों के अंकुर देखो
दूधमुँहे ज्यों खिलखिला रहें
परती लहलहा उठी
उनके स्वेद की धार से
जगती का भंडार भरा
उनके अन्न के उपहार से
हलधर-पालनहार तुम
विष्णु-भगवान तुम
कोटि-कोटि प्राण हम
ऋणी तुम्हारे हम
धिक्कार है हम सब पर
तुम पर प्रहार हुआ
हत् भाग्य हम सबका,
तुम्हारा तिरस्कार किया
हाय रे, धरतीपुत्र !
तुम्हें हमने निराश किया
और,
मृत्यु का प्यार पाकर
उसी को स्वीकार किया।

खेती

बड़ी उर्वरा है अपनी भावभूमि,
चलो खेती करते हैं,
अच्छे-अच्छे शब्द उगायेंगे।

सरस-सरल,
भोले-भाले,
प्यारे-प्यारे,

सहज, मन को छूने वाले
मन को झकझोरने वाले,
आशा-उम्मीदों वाले,
उत्साह के बीज वाले,
आनंदातिरेक वाले,
ईमान-सम्मान वाले,
जन-जन को जोड़ने वाले,
मन-मन को जोड़ने वाले।

निर्विकार-निस्तेज़ जीवन को
इन खेतों में हम लगायेंगे,
मुस्कान की फसल उगायेंगे,
संवेदनाओं को लहलहायेगें,
चलो खेती करते हैं,
बड़ी उर्वरा है अपनी भावभूमि,..।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - पूनम (कतरियार)
जन्मस्थान - हजारीबाग(झारखण्ड)
शैक्षिक योग्यता - एम.ए. (हिन्दी साहित्य)
संप्रति - लेखन
पता - ए-43, जगत- अमरावती अपार्टमेंट, बेलीरोड़, पटना -1
प्रकाशन - रांची एक्सप्रेस, आज आदि अखबारों, ऋभु-संदेश नामक पत्रिका में कविताएं प्रकाशित। सारिका एवं धर्मयुग में कुछ विवेकपूर्ण पत्रों का प्रकाशन त्रैमासिक पत्रिका में कविताएं प्रकाशित। अनेक अखबारों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशन जारी।
आगाह काव्य संग्रह- अंतरा शब्दशक्ति प्रकाशन
सम्मान - वूमन आवाज सम्मान 2018

लेखन का उद्देश्य :-

मुझे लगा कि लेखन में जीवन का अनुभव होना चाहिए। जीवन की व्यवहारिकता से संपृक्त साहित्य लिखना मेरा ध्येय था। मैं कम लिखूं, पर गुणवत्ता पूर्ण लिखूं। कोरी भावुकता, कल्पना की ऊँची उड़ान, विद्रोह-विरोध को भारी भरकम शब्दों में कहने की आज की प्रवृत्ति से इतर संवेदनाशील साहित्य का सृजन करना मेरा ध्येय है। कह सकते है कि, मैं साहित्य की मौन साधिका रही, जो भीड़ से दूर रहकर भी हिन्दी साहित्य की सेवा करना चाहती हूँ।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-88102-78-0
मूल्य 55/-